'राजधर्म' का पुनः प्रकाशन

'सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद' ने पहली अक्तूबर 1968 से 'राजधर्म' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया जो इसका मुख-पत्र था। परिषद् की समस्त योजनाओं, गतिविधियों और उपलब्धियों का विस्तृत ब्यौरा इसमें शब्द-निबद्ध होता रहा है। सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् यों तो आर्य समाज का संगठन था और उसका मुख्य उद्देश्य आर्य युवकों को संगठित करना, योग एवं व्यायाम के प्रति उनकी रुचि पैदा करना, ब्रह्मचर्य संकल्प से उनको दीक्षित कराना, आर्यसमाज की सेवा के लिए उनको तैयार करना तथा सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों और आर्थिक शोषण के प्रति उन्हें जागरूक और सक्रिय करना था। लेकिन परिषद ने अपने को यहीं तक सीमित नहीं रखा। प्रारम्भ से ही परिषद के मुख्य संस्थापकों स्वामी इन्द्रवेश जी और स्वामी अग्निवेश जी का लक्ष्य आर्यसमाज का एक राजनीतिक मंच तैयार करने का भी रहा था। आर्यसमाज में इस मुद्दे को लेकर पहले भी काफी चिन्तन-मनन, विवाद और संघर्ष होता रहा था लेकिन ऐसा कोई प्रयास सिरे नहीं चढ़ा था क्योंकि इसके पक्ष और विपक्ष में धुरंधर नेता हमेशा खड़े रहे हैं। मेरठ में आयोजित एक आर्य महासम्मेलन में आर्य मनीषी व नेता जो बाद में सांसद भी रहे श्री जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती ने मंच से उन लोगों के लिए 'हीज़ड़ा' शब्द प्रयुक्त किया था जो राजनीति से परहेज करके चल रहे थे। इस पर काफी बवाल और हो-हल्ला मचा था। आर्यसमाज में शुरू से ही महाशयों और बाबुओं का बोलबाला रहा है अतः अंग्रेजों के समय से ही अपने निहित आर्थिक स्वार्थों व अपनी नौकरियों को बचाने के चक्र में ये लोग हमेशा से ही राजनीति में आर्यसमाज के प्रवेश का विरोध करते रहे हैं। हाँ, एक बीच का रास्ता यह जरूर निकाला गया कि कोई भी आर्यसमाजी किसी भी राजनीतिक दल के सदस्य के रूप में अथवा स्वतन्त्र रूप से राजनीतिक गतिविधियों में संलग्न रहना चाहे तो व्यक्तिगत रूप में वह ऐसा करने में स्वतन्त्र होगा बशर्ते वह इसके लिए आर्यसमाज के मंच का दुरुपयोग न करे। सार्वदेशिक सभा में ऐसे ही लोगों का सदा वर्चस्व रहा है जो इसी मत के रहे अतः जब भी सार्वदेशिक सभा में इस नीति में परिवर्तन लाने की किसी ने मांग रखी तो वह ठुकरा दी गई।

सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् के संस्थापक इस बात को जानते व समझते थे अतः बजाय एक आर्यसामाजिक राजनीतिक दल खड़ा करने के लिये उनका प्रयास यह रहा कि परिषद् के द्वारा ही राजनीतिक गतिविधियाँ चलाई जायें और प्राप्त उपलब्धियों के आधार पर आगे जाकर राजनीतिक संगठन बनाया जाये तो उसे स्वीकारने की मानसिकता लोगों में तब तक विकसित हो चुकी होगी। अतः सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् ने अपने घोषित उद्देश्यों के साथ-साथ किसानों, सरकारी कर्मचारियों तथा छात्रों की लड़ाई भी लड़ी और मँहगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार के मुद्दों को लेकर भी संघर्ष किया। इस संघर्ष में परिषद् के नेता व कार्यकर्त्ताओं को सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा, यष्टि-प्रहारों की मार सहनी पड़ी, गोलियों का सामना करना पड़ा, झूठे मुकदमों में उलझना पड़ा, धरने देने पड़े व भूख हड़तालें करनी पड़ी। ऐसे तमाम अवसरों पर 'राजधर्म' का दायित्व बढ़ जाता था, उसे भी सक्रिय होकर मैदान में उतरना पड़ता था और इस सबका परिणाम भी सरकारी क्रोध का शिकार होकर भुगतना पड़ता था। अपने साहसिक अभियान के कारण 'राजधर्म' को अनेक बार मुकदमों का सामना करना पड़ा, कई बार इसके कार्यालय पर सरकारी ताला लगा, इसकी प्रकाशन सामग्री सेंसर हुई, इसके प्रेस को तालाबंदी का शिकार होना पड़ा और इसके कर्मचारियों को भी पुलिस के डंडे खाने पड़े व हवालात में जाकर सड़ना पड़ा।

'राजधर्म' के सामने सबसे बड़ी दिक्कत आर्थिक थी। सरकारी विज्ञापन उसे मिलते नहीं थे, प्राईवेट कम्पनियाँ भी अपने-अपने कारणों से विज्ञापन न दे पाती थीं। इस संगठन को लेकर आर्यसमाज का शीर्षस्थ नेतृत्व हमेशा सशंकित एवं भयभीत रहा अतः आर्यसमाज के सम्पन्न घराने भी इसे आर्थिक सहयोग देने में संकोच करते थे। ले-देकर इसके ग्राहक ही शुल्क दे पाते थे लेकिन उसमें भी काफी अनियमितता रहती थी। चूँकि परिषद् को अपने प्रचार-प्रसार के लिए हमेशा ही एक मुख-पत्र की आवश्यकता रहती थी इसलिए घाटा उठाकर भी 'राजधर्म' को प्रकाशित करना उसकी एक मजबूरी थी। उसे कागज का कोटा कभी नहीं मिला। उससे जुड़े सम्पादकों-संवाददाताओं को कभी वेतन नहीं मिला, टेलीफोन आदि की स्वतन्त्र सुविधा कभी नहीं मिली। लेखकों को कभी पारिश्रमिक नहीं दिया गया लेकिन फिर भी सभी मिशनरी भावना से 'राजधर्म' के लिए अहर्निश जुटे रहे।

'राजधर्म' को अनेक बाधाओं का, जो राजनैतिक व आर्थिक अधिक थीं, सामना करना पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप वह हिचकौले ले-लेकर अर्थात् कभी बन्द व कभी शुरू का खेल खेलता रहा। यद्यपि यह समय-समय पर दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक रूप में आवश्यकतानुसार निकलता रहा तथापि अनियमित प्रकाशन के कारण उसकी प्रसार संख्या अथवा ग्राहक संख्या कभी इतनी नहीं रही कि आर्थिक रूप से वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके। सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं के पत्र कभी व्यावसायिक आधार पर नहीं निकलते इसलिए उन्हें घाटे पर ही मिशन के लिए प्रकाशित करने की मजबूरी रहती है। यह मजबूरी 'राजधर्म' की भी नियति बनकर रही। प्रारम्भिक 17 वर्ष की उसकी अवधि तो उतार-चढ़ाव की ही रही। 1986 में हरिद्वार कुम्भ मेले में वेद प्रचार शिविर लगाने की चर्चा जब अन्तर्राष्ट्रीय विरक्त मण्डल और सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् ने मिलकर की तो पिछले साढ़े नौ महीने से बन्द पड़े 'राजधर्म' को फिर से शुरू करने की बात उठी क्योंकि इस शिविर को सफल बनाने के लिए एक सशक्त प्रचार माध्यम की जरूरत थी जो 'राजधर्म' के पुनःप्रकाशन से ही पूरी हो सकती थी। यह एक विडम्बना रही है कि सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् आर्यसमाज का ही अभिन्न संगठन था लेकिन उसे हमेशा ही अपनी प्यास अपनी कुइया खोदकर बुझानी पड़ी। पूरे आर्यसमाज में एक भी पत्रिका ऐसी नहीं थी जो उसकी गतिविधियों को कवर करती। कारण, ये पत्रिकाएँ सभाओं की पत्रिकाएँ थीं जो अपने निहितार्थों के ही बोझ से दबी रहती थीं। उक्त दोनों संगठनों द्वारा लिए गये निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए अक्तूबर 1984 से 'राजधर्म' एक बार फिर मासिक रूप से निकलना शुरू हुआ। इसकी कमान ओम प्रकाश पत्रकार और जगवीर सिंह जी को सौंपी गई लेकिन पत्रकार जी ने साफ कर दिया था कि अपनी व्यस्तताओं के कारण वे अधिक दिन सहयोग न कर सकेंगे। अतः 1985 से अगस्त 1992 तक जगवीर सिंह जी ही इसका सम्पादन करते रहे। इसी एक अवसर पर सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् और अन्तर्राष्ट्रीय विरक्त मण्डल की एक संयुक्त बैठक में निमन्त्रण मिलने पर मैं भी आर्यसमाज शक्ति नगर पहुँच गया। मैं इनमें से किसी भी संगठन से जुड़ा हुआ नहीं था और न ही इससे पहले कभी आर्यसमाज शक्ति नगर को देखा था। यद्यपि दिल्ली में मैं अगस्त 1966 से रह रहा था। सन् 1983 की अजमेर शताब्दी पर जब श्री चन्द्रमोहन शास्त्री जी ने स्व0 श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती जी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए 'सम्राट्' को मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया तो मैं भी सक्रियता से उनके साथ जुड़ गया था और लगभग आठ-दस वर्ष 'सम्राट्' निकालते रहे जो आर्यसमाज की लोकप्रिय पत्रिका के रूप में चर्चित रहा। इससे पहले 1967 से ही मैंने 'आर्य मर्यादा' में लिखना शुरू कर दिया था जो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की पत्रिका थी और दिल्ली से सिद्धान्ती जी के सम्पादन में निकलती थी। अपने इस अनुभव के साथ जब मैं आर्यसमाज शक्ति नगर गया और वहाँ पहली बार स्वामी इन्द्रवेश जी व स्वामी अग्निवेश जी को उनके निकट सान्निध्य में बैठकर सुना तो मुझे लगा कि अपनी जिस भावी अराजनीतिक योजना के साथ वे आर्यसमाज में पुनः सक्रिय होना चाहते हैं उसमें मुझे भी अपना योगदान देना चाहिए।

अपनी इस इच्छा को मैंने वहाँ व्यक्त नहीं किया। इसके दो कारण थे जो मेरे स्वभाव से जुड़े हुए थे। एक तो यह कि मैं कभी भावुकता में कदम नहीं उठाता अतः दीर्घकालीन फैसला लेने से पहले हर पहलू को अच्छी तरह जानने-समझने का आदी हूँ। दूसरा यह कि मैं स्वभाव से संकोची हूँ मुखर नहीं अतः मंच पर या सार्वजनिक बैठक में बोलने से मैं हमेशा परहेज करता रहा हूँ। तीसरा भी एक कारण माना जा सकता है जो मेरे स्वभाव का तो अंग नहीं है लेकिन एक नसीहत या हिदायत के साथ मुझ से जुड़ गया है। यह नसीहत या हिदायत सिद्धान्ती जी की थी कि लेखक के रूप में यदि सफल होना चाहते हो तो मंच के प्रलोभन में कभी न पड़ना। नेता बनने, अपने को विज्ञापित करने या पुरस्कृत होने की इच्छा मुझे न पहले कभी रही न आज है इसलिए सिद्धान्ती जी की बात मैंने अपनी गांठ में बाँध ली। साहित्यजीवी होने तथा सरकारी नौकरी पीटने के कारण भी मैं कभी प्रवचन देने, भाषण झाड़ने के क्षेत्र से नहीं जुड़ सका। मैं अपना लेखकीय धर्म अब तक जिस भी रूप में निभा सका हूँ उस पर मुझे गर्व भी है और संतोष भी। मैं नहीं समझता कि इससे बड़ा भी कोई पुरस्कार मेरे जैसे किसी व्यक्ति के लिए हो सकता है।

घर आकर मैंने वेशद्वय की योजना पर विचार किया। आत्मा ने भी कहा कि इनसे मिल कर काम करना ठीक रहेगा, भले ही वह आर्यसमाज से निर्वासित दल क्यों न हो काम तो आर्यसमाज के सर्वोत्थान का ही करना चाहता है। मेरठ और अजमेर के आर्य महासम्मेलनों व शताब्दी पर इन्होंने जो ऊधम, धमाचौकड़ी मचाई थी उसे मैंने अपनी आँखों से देखा था और उन पर की गई आर्यसमाज की बुजुर्ग पीढ़ी की टिप्पणियों को भी मैंने पढ़ा था। इस जनरेशन-गैप को समझने का मैंने जब प्रयास किया तो मुझे ऐसा आभास हुआ कि इस समूचे प्रसंग में असल झगड़ा कुर्सी का है। पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी को सत्ता हस्तांतरण करने को तैयार नहीं है। जिस तालाब का पानी बदला नहीं जाता वह जल्द ही दुर्गन्ध छोड़ने लगता है। आर्यसमाज भी इसी त्रासदी का शिकार है। इन विचारों को लेकर मैंने वेशद्वय को सहयोग देने का मन बनाया और एक पोस्टकार्ड आर्यसमाज शक्ति नगर के पते पर भेज दिया। मुझे सूचना मिली कि स्वामी इन्द्रवेश जी अपने साथ श्री जगवीर सिंह को लेकर मेरे नांगलोई निवास पर ही मिलने आ रहे हैं। स्वामी जी की इस निरभिमानता, सादगी, सरलता, सौम्यता और सहजता ने मुझे उनके आने से पहले ही उनका मुरीद बना दिया। ये दोनों महानुभाव मेरी कुटिया पर पधारे, विचार-विमर्श हुआ, सहमति बनी और मैं सितम्बर 1992 से 'राजधर्म' से आ जुड़ा। इस अंक के 'दो शब्द' शीर्षक सम्पादकीय के रूप में मैंने इन शब्दों में 'राजधर्म' से जुड़ने का रहस्य खोला था-

''यह कोई ढ़की-छिपी बात नहीं है कि आठ-दस वर्ष तक प्रातः स्मरणीय स्व. जगदेव सिंह सिद्धान्ती जी का सान्निध्य मुझे प्राप्त रहा है और उनकी ही महती कृपा, प्रेरणा और आशीर्वाद से जो कुछ मैं आज हूँ, बन सका हूँ। वेशद्वय के जो गहरे एवं एक हद तक कटु मतभेद किसी भी कारण से सिद्धान्ती जी से रहे उसका जितना स्मरण स्वामी इन्द्रवेश जी या स्वामी अग्निवेश जी को है उतना ही मुझको व अन्यों को भी है। फिर अचानक उस अशोभनीय प्रसंग को भुला कर मैं 'राजधर्म' से कैसे जुड़ गया? निश्चय ही यह प्रश्न मेरे शुभ चिन्तकों और मित्रों को असमंजस में डाल रहा होगा। इसका कारण है वह विश्वास और स्नेह जो स्वामी इन्द्रवेश जी ने मुझे दिया है। प्रतिपक्ष पर इस सहज भाव से मेहरबान होना और विश्वास करना स्पष्ट संकेत देता है कि हृदय परिवर्तन और आत्मचिन्तन द्वारा उन्होंने पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर एक ऐसी निष्पक्ष व निर्मल स्थिति प्राप्त कर ली है जो प्रतिपक्ष पर भी भरोसा करने की क्षमता व्यक्ति में पैदा कर देती है। ऐसे ही उदारमना व्यक्ति समाज में अजातशत्रु के रूप में प्रतिष्ठित हुआ करते हैं और जिधर भी वे निकल जाते हैं विजय श्री उनका वरण करने को उद्यत मिलती है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि स्वामी जी आर्यसमाज को ही पूरे संदर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में स्वीकारते हुए उसे राष्ट्रोद्धार का अन्तिम विकल्प मानकर चलना चाहते हैं और अपने भावी पुरोगम में साफ नीयत से सभी को साथ लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं। अतः हमारा और आपका भी फर्ज बनता है कि साफ नीयत से उन्हें सहयोग दें। अन्तराल के पश्चात स्वामी इन्द्रवेश जी को आर्यसमाज की सुध आई है, उस पर विश्वास जमा है और उसे सही दिशा में सक्रिय करने को कटिबद्ध हुए हैं। इस बीच समय के पुल नीचे से न जाने कितना क्यूसिक पानी गुजर चुका है। इस कमी को, जो कि आर्यसमाज के हिस्से में दर्ज है, दूर करने के लिए हम सभी को बिना समय गंवाये व बिना किसी संशय को पाले एकजुट होना होगा, सक्रिय होना होगा और जितना भी जिस प्रकार का सहयोग अपने से बन पड़ता है देना होगा। वह संघर्ष जो निकट भविष्य में शुरू होने जा रहा है अकेले इन्द्रवेश जी या अग्निवेश जी या किसी अन्य व्यक्ति विशेष का न होकर समूचे समाज और राष्ट्र का संघर्ष है अतः इसे उस समर्पित भावना, कर्त्तव्य परायणता, अनुशासन और वीरोचित साहस से सफल बनाना होगा जिसका सहज परिचय एक सैनिक मातृभूमि के अग्रिम मोर्चे पर दिया करता है।

''जन-जन में यह भावना और विश्वास पैदा करने के लिए सबसे बेहतर व कारगर माध्यम एक पत्रिका ही हो सकती है। परमपिता परमात्मा से यही कामना है कि 'राजधर्म' फले-फूले, दिन-रात चौगुनी तरक्की करे और इस कसौटी पर खरा उतर कर एक अन्यतम उदाहरण के रूप में चिरकाल तक स्मरण किया जाता रहे। आर्यसमाज के प्रबुद्ध, चेतन एवं क्रियाशील विद्वानों, चिन्तकों, मनीषियों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि अपने सहयोग और मार्गदर्शन का सम्बल हमें प्रदान करें, कहीं कुछ त्रुटि व असावधानी दृष्टिगोचर हो तो सचेत करें जिससे कि 'राजधर्म' को ऐसे सशक्त माध्यम का रूप मिल सके जिससे वह महर्षि दयानन्द के अधूरे संकल्प को पूरा कर सके, आर्यसमाज को सही दिशा व सही अर्थों में आध्यात्मिक, शैक्षिक, सामाजिक व राष्ट्रीय संस्था की गरिमा प्रदान कर सके तथा समाज व राष्ट्र के अभ्युदय, उन्नयन एवं कायाकल्प की गारंटी बन सके।''

1992-2007 अर्थात् पन्द्रह-सोलह वर्ष की यह अवधि 'राजधर्म' से जुड़कर कैसे पूरी हो गई कुछ पता ही नहीं चला। बीच में डॉ0 संतोष कण्व का सहयोग व मार्गदर्शन भी हमें मिला। ऐसे वीतराग, एकनिष्ठ, समर्पित, निर्लोभी और सौम्य स्वभाव के आर्य युवक आज आर्यसमाज में मिलने व दिखने दुर्लभ हो गये हैं। कैंसर से पीड़ित होने के कारण वे ऐसे समय हमें छोड़कर चले गये जब 'राजधर्म' को उनकी सबसे अधिक जरूरत थी। स्वामी अग्निवेश जी से किसी बात पर नीतिगत विचार-भिन्नता पैदा होने पर मैं गत पांच-सात महीने से 'राजधर्म' में नहीं लिख रहा था। कण्व जी और जगवीर जी मुझे वापस लाने का निरन्तर प्रयास कर रहे थे। कण्व जी की शोक सभा में जब मैं बरेली गया तो अग्निवेश जी ने मुझे श्रोताओं में बैठा देख लिया और उन्होंने मंच से कण्व जी को शोकांजलि देते हुए मेरी ओर कातर दृष्टि से देखते हुए उपालम्भ दिया। जब वे वहाँ से विदा होने लगे तो मैं उनसे मिला। उन्होंने कहा क्या ही अच्छा हो आप लौट कर कण्व जी के रिक्त स्थान की पूर्ति करें और हम सभी मिलकर काम करें। इस प्रकार लगभग सात-आठ महीने के अन्तराल के बाद मैं फिर सक्रिय होकर 'राजधर्म' से आ जुड़ा।

अक्तूबर 1985 से अब तक अर्थात् गत 22 वर्षों से 'राजधर्म' बिना नागा मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हो रहा है। बीच में अल्पकाल के लिए इसे पाक्षिक या साप्ताहिक भी प्रकाशित किया गया। 'राजधर्म' के शुरू से अब तक के अंकों का यदि सिंहावलोकन किया जाये तो यही तथ्य उभर कर सामने आता है कि 1968-2007 के चार दशकों में कोई भी आर्यसमाजी पत्रिका ऐसी नहीं रही है जो इतनी क्रान्तिकारी, जुझारू, खतरों को मोल लेने वाली, आर्यसमाज के विरोधियों को जबरदस्त फटकार देने वाली, भ्रष्ट प्रशासन व सरकार को हिलाने वाली, नवयुवकों का चरित्र निर्माण करने वाली,

सामाजिक कुरीतियों व धार्मिक आडम्बरों से लोहा लेने वाली, समाज के शोषित और वंचित वर्ग की हिमायत करने वाली, आर्यसमाज को झकझोर कर क्रान्ति-पथ पर अग्रसर करने वाली तथा आर्यसमाज के आलसी, निकम्में, स्वार्थी, अवसरवादी और पदलोलुप नेतृत्व की गरदन नापने वाली रही हो। 'राजधर्म' ने आर्यसमाज की पत्रकारिता को नये आयाम दिये हैं, नयी दिशाएँ व ऊँची मंजिलें प्रदान की हैं। उसने संघर्षों को देखा भर नहीं है बल्कि खुद उन संघर्षों को जीया है, भोगा है। उसने अपने अस्तित्व के खत्म होने का जोखिम उठा कर अपने जीवन मूल्यों व आदर्शों की रक्षा की है, अपने स्वाभिमान को बेचा नहीं है, अपने रास्ते को छोड़ा नहीं है, न उसने हथियार डाले और न ही घुटने टेके यद्यपि परिस्थितियाँ उसे ऐसा करने पर बाध्य करती रहीं। आर्यसमाज के दलीय घटक भले ही उसका मूल्यांकन कैसे भी करें लेकिन जब एक निरपेक्ष इतिहासकार उस पर लिखने के लिए अपनी लेखनी उठायेगा तो यही लिखेगा- 'राजधर्म' आर्यसमाज का गौरव है।''

'राजधर्म' पर यदि शोध कार्य हो तो आर्यसमाज के गत सवा सौ वर्ष में चालीस साल का एक ऐसा उज्ज्वल काल खण्ड शोधार्थी को दृष्टिगोचर होगा जो भूतकाल में कभी नहीं रहा और शायद भविष्यकाल में भी किसी को दृष्टिगोचर न हो। शोधार्थी को सबसे अधिक हताश, लज्जित और निराश भी इसी कालखण्ड पर होना पड़ेगा क्योंकि इन्द्र और अग्नि की इस जोड़ी की शक्ति-सामर्थ्य, विचार-भावना, त्याग-बलिदान और संकल्प-निश्चय को तत्कालीन आर्य-नेतृत्व न समझने की क्षमता रखता था, न सहन करने का धैर्य रखता था और न ही उन्हें आगे बढ़ाने का विवेक रखता था। अपने अहं का शिकार होकर वक्त के इस निकृष्टतम बुजुर्ग नेतृत्व ने आर्यसमाज के एक ऐसे स्वर्णिम अध्याय पर कालिख पोतने का अक्षम्य अपराध किया जिस पर सदियाँ आँसू बहाती रहेंगी। फिर भी यह एक ऐसा अध्याय है कि यदि उसे दूरदर्शिता और पारदर्शिता से संकलित करके भावी पीढ़ियों के लिये सुरक्षित रख लिया जाये तो सम्भव है किसी युग में इन्द्र और अग्नि की यह जोड़ी फिर दिखाई दे जाये और अपने इस युग के अर्द्ध सत्य को पूरा कर जाये, अपने अधूरे संकल्प को पूरा कर जाये और आर्यसमाज को एक ऐसी ताकत दे जाये जो दूसरी किसी भी ताकत से पराजित न हो सके।

'राजधर्म' में ऐसे क्रांतिदर्शी सम्पादकीय, ऐसे प्रेरक लेख एवं उद्‌बोधन और संघर्षकारी प्रसंग एक अक्षय कोष की तरह भरे हुए रखे हैं कि यदि उनका संकलन और प्रकाशन कर दिया जाये तो इसका प्रभाव 'सत्यार्थप्रकाश' से भले अधिक न रहे लेकिन कम भी नहीं होगा। युवा पीढ़ी इस संकलन को पढ़कर निश्चय ही स्तब्ध, रोमांचित और प्रेरित होगी। ऐसा संकलन न केवल स्वामी इन्द्रवेश जी का कीर्ति-कलश बनेगा वरंच आर्यसमाज के इतिहास का एक गौरवशाली अध्याय भी बनेगा। निश्चय ही यह सारस्वत यज्ञ श्रमसाध्य और व्ययसाध्य है लेकिन यदि यह कार्य तुरंत नहीं हुआ तो विलुप्त प्रायः हो रहे 'राजधर्म' के पुराने अंक इस यज्ञ में बाद में व्यवधान उपस्थित करेंगे। इस पूरी सामग्री का अध्ययन करने पर ही पाठक को अहसास हो सकता है कि स्वामी इन्द्रवेश जी वस्तुतः एक व्यक्ति नहीं एक मिशन थे और स्वामी अग्निवेश जी वस्तुतः एक भ्रान्ति नहीं एक क्रान्ति हैं। एक ऐसी क्रान्ति जिसे दयानन्द, मार्क्स, गाँधी और जय प्रकाश नारायण जैसी विभूतियाँ मिलकर समग्रता एवं पूर्णता प्रदान करती हैं।